Indian Journal of Modern Research and Reviews

This Journal is a member of the *'Committee on Publication Ethics'*

Online ISSN:2584-184X

Research Paper

भारतीय शिक्षा का क्रमिक विकास और सुधार की दिशा

कविता कुमारी [1*], डॉ. रेणु गुप्ता [2]

[1] शोधार्थी,वाई.बी.एन यूनिवर्सिटी, रांची, झारखण्ड, भारत

[2] शोध निर्देशिका, सहायक प्राध्यापक, वाई.बी.एन यूनिवर्सिटी, रांची, झारखण्ड, भारत

Corresponding Author: * कविता कुमारी

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.17577252

सारांश

भूमिका-भारत के इतिहास और संस्कृति में शिक्षा को सदा से सर्वोच्च स्थान प्राप्त रहा है। यह देश विश्व की उन प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है जिसने ज्ञान और विद्या को जीवन की दिशा और समाज की संरचना का मूल आधार माना। यहाँ शिक्षा केवल जीविका अर्जित करने का साधन नहीं रही, बल्कि आत्मा के उत्थान, धर्म और संस्कृति की रक्षा तथा समाज की उन्नति का माध्यम भी रही है। भारत में शिक्षा का ऐतिहासिक विकास हजारों वर्षों की यात्रा है, जिसमें गुरुकुल प्रणाली से लेकर आधुनिक विश्वविद्यालयों और नीतिगत सुधारों तक के अनेक चरण सम्मिलित हैं। इस यात्रा में जहाँ एक ओर परंपरागत शास्त्रीय विद्या और धार्मिक शिक्षण केंद्रित रहे, वहीं दूसरी ओर आधुनिक काल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तकनीकी कौशल और लोकतांत्रिक आवश्यकताओं ने शिक्षा की संरचना को नया रूप दिया।

प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप अत्यंत समृद्ध और व्यवस्थित था। गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का मूल आधार थी, जहाँ विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर वेद, उपनिषद, व्याकरण, दर्शन, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र और नैतिक जीवन मूल्यों की शिक्षा ग्रहण करते थे। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्ति नहीं बल्कि चरित्र निर्माण और समाजोपयोगी व्यक्तित्व का निर्माण था। इस काल में शिक्षा निःशुल्क होती थी और विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अनुशासन और आत्मसंयम का अभ्यास करना पड़ता था। तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय उस समय विश्वविख्यात थे, जहाँ न केवल भारत बल्कि विदेशों से भी विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे। इन संस्थानों में चिकित्सा, गणित, ज्योतिष, राजनीति, न्यायशास्त्र और बौद्ध दर्शन जैसे विषय पढ़ाए जाते थे। मध्यकालीन भारत में शिक्षा का स्वरूप कुछ परिवर्तित हुआ। इस काल में मदरसे और मक़तब ज्ञान के प्रमुख केंद्र बने। यहाँ इस्लामी धर्मशास्त्र, अरबी और फारसी भाषा, साहित्य और गणित की शिक्षा दी जाती थी। साथ ही संस्कृत पंडित और पाठीशालाएँ भी विद्यमान रहीं, जहाँ वैदिक और शास्त्रीय अध्ययन जारी रहा। मध्यकालीन भारत की शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का प्रभाव अधिक था और व्यावहारिक विज्ञान तथा तकनीकी विषयों पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया। इसके बावजूद इस युग में साहित्य, संगीत, स्थापत्य और कला का विकास शिक्षा के सहारे ही संभव हुआ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी— शिक्षा का सार्वभौमिकरण और इसे राष्ट्रीय विकास का साधन बनाना। 1947 में देश की साक्षरता दर मात्र 12% थी और अधिकांश जनसंख्या शिक्षा से वंचित थी। ऐसे में नीतिगत स्तर पर शिक्षा को प्राथमिकता देना अनिवार्य था। 1948 में राधाकृष्णन आयोग गठित हुआ, जिसने उच्च शिक्षा की दिशा तय की। इसके बाद 1952 में मुदालियर आयोग ने माध्यमिक शिक्षा सुधारों पर बल दिया।

1964-66 में कोठारी आयोग ने शिक्षा की व्यापक समीक्षा की और यह सिफारिश की कि शिक्षा को राष्ट्रीय विकास का सबसे महत्वपूर्ण साधन माना जाए। आयोग ने "समान अवसर" और "सर्व शिक्षा" पर बल दिया और कहा कि शिक्षा को व्यावसायिक और तकनीकी आवश्यकताओं से जोड़ा जाए। कोठारी आयोग की सिफारिशों के आधार पर 1968 में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू हुई, जिसमें प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण, मातृभाषा में शिक्षा, विज्ञान और तकनीकी पर जोर तथा शिक्षा के लोकतंत्रीकरण जैसे प्रावधान शामिल थे।

Manuscript Info.

- ✓ **ISSN No:** 2584-184X
- ✓ **Received:** 12-10-2024
- ✓ **Accepted:** 28-11-2024
- ✓ **Published:** 29-12-2024
- ✓ **MRR:2(12):**2024;39-44
- ✓ **©2024, All Rights Reserved.**
- ✓ **Peer Review Process:** Yes
- ✓ **Plagiarism Checked:** Yes

How To Cite

कुमारी क, गुप्ता आर. भारतीय शिक्षा का क्रमिक विकास और सुधार की दिशा. Indian J Mod Res Rev. 2024;2(12):39-44.

मुख्य शब्द: शिक्षा, विकास, इतिहास, नीति, परंपरा, गुरुकुल, औपनिवेशिक शिक्षा, आधुनिक शिक्षा, मैकाले की नीति, वुड का डिस्पैच, राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन, विश्वविद्यालय स्थापना, स्वतंत्रता के बाद सुधार, शिक्षा आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, सर्वशिक्षा अभियान, साक्षरता, नई शिक्षा नीति 2020, तकनीकी शिक्षा, ज्ञान समाज।

© 2024 कविता कुमारी, डॉ. रेणु गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

परिचय

21वीं सदी में शिक्षा नीति ने वैश्विक प्रतिस्पर्धा और ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नए आयाम ग्रहण किए। 2020 में घोषित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) भारत की शिक्षा व्यवस्था में ऐतिहासिक सुधारों की घोषणा थी। इस नीति में विद्यालयी शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक कई बड़े परिवर्तन किए गए। 5+3+3+4 की नई संरचना, बहु-विषयक शिक्षा, कौशल विकास, मातृभाषा में शिक्षा पर बल, डिजिटल शिक्षा और शोध व नवाचार को बढ़ावा देना इसके मुख्य पहलू थे। इस नीति का उद्देश्य केवल साक्षरता बढ़ाना नहीं बल्कि भारत को ज्ञान महाशक्ति बनाना है।भारत में शिक्षा के नीतिगत विकास का अध्ययन करते समय यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि शिक्षा केवल सरकारी नीति का विषय नहीं है बल्कि समाज की सांस्कृतिक और आर्थिक आवश्यकताओं से भी गहराई से जुड़ा है। स्वतंत्रता के बाद से अब तक भारत ने शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। साक्षरता दर 12% से बढ़कर आज 75% से अधिक हो गई है। विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की संख्या कई गुना बढ़ी है। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा को विशेष प्राथमिकता दी गई है। आईआईटी, आईआईएम, एम्स और अन्य संस्थानों ने भारत को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाई है।

प्राचीन और मध्यकालीन भारत में शिक्षा

भारत का इतिहास शिक्षा की समृद्ध परंपरा और उसकी निरंतरता का जीवंत साक्षी है। यह भूमि केवल धर्म और संस्कृति की ही जननी नहीं रही, बल्कि यहाँ शिक्षा ने भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को दिशा और गति प्रदान की। प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक शिक्षा भारतीय समाज के जीवन मूल्यों, धार्मिक आदर्शों और सांस्कृतिक धरोहर का प्रमुख आधार रही है। शिक्षा ने मनुष्य को केवल ज्ञान ही नहीं दिया बल्कि उसे आचार, विचार और कर्म में संतुलन सिखाया। इस लंबी यात्रा में शिक्षा का स्वरूप समय-समय पर बदलता रहा, परंतु उसका उद्देश्य सदा समाज और व्यक्ति का समग्र उत्थान ही रहा। प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप अत्यंत व्यवस्थित और आदर्शवादी था। उस समय शिक्षा का उद्देश्य केवल जीविका अर्जन नहीं था, बल्कि आत्मा का उत्थान, धर्म का पालन और समाज की सेवा करना मुख्य ध्येय था। गुरुकुल प्रणाली इस काल की शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ थी। विद्यार्थी अपने गुरु के आश्रम में रहकर न केवल वेद, उपनिषद, व्याकरण, मीमांसा और न्याय का अध्ययन करते थे बल्कि उन्हें अनुशासन, संयम, आत्मनिर्भरता और समाजोपयोगी जीवन का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। शिक्षा का माध्यम मुख्यतः संस्कृत था और ब्रह्मचर्य को शिक्षा का अनिवार्य अंग माना जाता था।

गुरुकुलों में शिक्षा निःशुल्क होती थी। विद्यार्थी अपने श्रम से गुरु की सेवा करते और आचार्य उन्हें पुत्रवत् स्नेह देते। यह शिक्षा प्रणाली केवल ज्ञान का हस्तांतरण नहीं बल्कि चरित्र निर्माण की प्रक्रिया थी। शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य था— "सत्यम् वद, धर्मं चर" अर्थात सत्य बोलो और धर्म का आचरण करो। इस प्रकार शिक्षा जीवन का पर्याय थी और उसका आधार नैतिकता और धर्मशास्त्र था।

प्राचीन भारत में शिक्षा के महान केंद्रों में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी और उदंतपुरी जैसे विश्वविद्यालय प्रसिद्ध थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय चौथी शताब्दी ईसा पूर्व से ही ज्ञान का प्रमुख केंद्र था, जहाँ राजनीति, चिकित्सा, युद्धकला, आयुर्वेद, ज्योतिष, शल्य चिकित्सा और दर्शन के विषय पढ़ाए जाते थे। महान चिकित्सक चरक और राजनीतिज्ञ कौटिल्य यहीं के विद्वान रहे। नालंदा विश्वविद्यालय, जिसकी स्थापना गुप्तकाल में हुई, सातवीं शताब्दी में विश्व का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था। यहाँ दस हजार से अधिक विद्यार्थी और हजारों आचार्य विद्या प्रदान करते थे। नालंदा में बौद्ध दर्शन, तर्कशास्त्र, व्याकरण, गणित और चिकित्सा की शिक्षा दी जाती थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग और इत्सिंग ने नालंदा का विस्तृत वर्णन किया है और उसकी ख्याति का प्रमाण दिया है। विक्रमशिला विश्वविद्यालय भी पाल शासकों द्वारा स्थापित किया गया था, जहाँ तंत्र, दर्शन और बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन होता था।

प्राचीन भारत की शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक सीमित नहीं थी। शूद्रों और स्त्रियों के लिए यद्यपि औपचारिक शिक्षा के अवसर कम थे, परंतु घरेलू और व्यावहारिक ज्ञान उन्हें परिवार और समाज के माध्यम से प्राप्त होता था। बौद्ध धर्म ने शिक्षा को अधिक लोकतांत्रिक बनाने का प्रयास किया। बुद्ध के संघों में भिक्षुओं और भिक्षुणियों को समान शिक्षा मिलती थी। यह शिक्षा आत्मसंयम, करुणा और अहिंसा पर आधारित थी।

मध्यकालीन भारत में शिक्षा का स्वरूप कुछ भिन्न दिखाई देता है। इस काल में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ ही शिक्षा पर धार्मिक प्रभाव बढ़ गया। मकतब और मदरसे इस समय के शिक्षा संस्थान थे। मकतब प्राथमिक स्तर पर शिक्षा प्रदान करते थे, जहाँ कुरान, हदीस, अरबी भाषा और गणित की शिक्षा दी जाती थी। मदरसे उच्च शिक्षा के केंद्र थे, जहाँ इस्लामी धर्मशास्त्र, फारसी साहित्य, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, गणित और तर्कशास्त्र का अध्ययन होता था। दिल्ली, जौनपुर, आगरा, लखनऊ और गुलबर्गा में प्रमुख मदरसे स्थापित थे।

इस लंबी ऐतिहासिक यात्रा से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत की शिक्षा परंपरा निरंतरता और परिवर्तन का अनूठा संगम है। प्राचीन काल की गुरुकुल प्रणाली ने आत्मसंयम, नैतिकता और अनुशासन की नींव रखी, तो मध्यकालीन शिक्षा ने साहित्य, संगीत और आध्यात्मिक चेतना को समृद्ध किया। दोनों ही कालों में शिक्षा का लक्ष्य समाज को एकता, संस्कृति और नैतिकता के सूत्र में बाँधना रहा।

आज जब हम आधुनिक भारत की शिक्षा व्यवस्था पर विचार करते हैं तो हमें प्राचीन और मध्यकालीन परंपराओं से प्रेरणा मिलती है। आधुनिक नीतियों और तकनीकी प्रगति के बावजूद शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य वही है— मनुष्य को विवेकशील, नैतिक और समाजोपयोगी बनाना। प्राचीन और मध्यकालीन भारत की शिक्षा ने हमें यह सिखाया है कि शिक्षा का मूल स्वरूप केवल ज्ञानार्जन नहीं बल्कि जीवन का समग्र निर्माण है।

औपनिवेशिक काल में शिक्षा की स्थिति

भारत में शिक्षा की परंपरा अत्यंत प्राचीन और गौरवशाली रही है। प्राचीन काल के गुरुकुलों, नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों से लेकर मध्यकालीन मक़तबों और मदरसों तक शिक्षा का स्वरूप समय के साथ बदलता रहा। किंतु सबसे बड़ा परिवर्तन

© 2024 कविता कुमारी, डॉ. रेणु गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

औपनिवेशिक काल में हुआ, जब अंग्रेजों ने यहाँ अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के साथ ही शिक्षा की दिशा और दशा को भी अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल दिया। औपनिवेशिक काल की शिक्षा व्यवस्था को समझना आवश्यक है क्योंकि इसने न केवल भारत के शैक्षिक ढाँचे को प्रभावित किया बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन पर भी गहरे प्रभाव डाले।

मैकॉले की शिक्षा नीति ने भारत की शिक्षा व्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया। अंग्रेजी भाषा प्रशासन और उच्च शिक्षा का माध्यम बन गई। कलकत्ता, मद्रास और बंबई विश्वविद्यालयों की स्थापना 1857 में इसी उद्देश्य से की गई कि यहाँ से प्रशासनिक सेवाओं के लिए क्लर्क और अधिकारी तैयार हों। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन या समाज के नैतिक उत्थान से हटकर अंग्रेजी शासन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना बन गया।

औपनिवेशिक काल में शिक्षा का विस्तार तो हुआ, किंतु उसका स्वरूप संकीर्ण और उद्देश्यपरक था। प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा की गई और उच्च शिक्षा पर बल दिया गया, ताकि एक सीमित वर्ग अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर सके और ब्रिटिश शासन का सहयोगी बन सके। इससे शिक्षा में व्यापक असमानता उत्पन्न हुई। ग्रामीण क्षेत्रों और निर्धन वर्गों तक शिक्षा पहुँच ही नहीं पाई। 1854 के वुड्स डिस्पैच ने यद्यपि प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान देने और महिला शिक्षा को प्रोत्साहन देने की बात कही, किंतु व्यवहार में इन पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया।

महिला शिक्षा औपनिवेशिक काल में धीरे-धीरे विकसित हुई। ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों ने बालिका शिक्षा को बढ़ावा दिया। 19वीं शताब्दी में बेतिया, पुणे और कलकत्ता में कन्या पाठशालाएँ खोली गईं। मिशनरी स्कूलों ने भी महिला शिक्षा को प्रोत्साहित किया, यद्यपि उनका उद्देश्य धार्मिक प्रचार अधिक था। इसके बावजूद धीरे-धीरे समाज में महिला शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हुआ और रुक्मिणीबाई, सावित्रीबाई फुले जैसी अग्रणी महिलाएँ सामने आईं।

औपनिवेशिक शिक्षा की सबसे बड़ी आलोचना यह रही कि इसने भारतीय समाज को दो भागों में बाँट दिया— एक ओर अंग्रेजी शिक्षित वर्ग, जो आधुनिक विचारों से प्रभावित था, और दूसरी ओर पारंपरिक शिक्षा से जुड़े लोग। इससे समाज में नई और पुरानी शिक्षा के बीच गहरी खाई उत्पन्न हो गई। अंग्रेजी शिक्षा ने भारत में एक ऐसे मध्यमवर्ग का निर्माण किया जिसने आगे चलकर सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, परंतु यह वर्ग जनसाधारण से कट गया।

1913 में ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा में कुछ सुधार किए और प्राथमिक शिक्षा के प्रसार की बात कही। 1917 में सैडलर आयोग ने विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधारों का सुझाव दिया। 1935 के भारत सरकार अधिनियम ने शिक्षा का उत्तरदायित्व प्रांतीय सरकारों को सौंप दिया। इस अवधि में राष्ट्रीय नेताओं और समाज सुधारकों ने स्वदेशी शिक्षा संस्थानों की स्थापना की। टेगोर ने शांति निकेतन की स्थापना की, जहाँ शिक्षा को प्रकृति और कला से जोड़ा गया। गांधीजी ने वर्धा में बुनियादी शिक्षा की योजना प्रस्तुत की। इन प्रयासों ने शिक्षा को राष्ट्रवादी दृष्टि प्रदान की।

औपनिवेशिक काल के अंत तक भारत में शिक्षा का परिदृश्य कुछ बदला अवश्य, परंतु व्यापक दृष्टि से देखें तो स्थिति संतोषजनक नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की साक्षरता दर मात्र 12 प्रतिशत थी। अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित थी। महिला शिक्षा की स्थिति भी अत्यंत दयनीय थी। प्राथमिक शिक्षा का प्रसार बहुत धीमा था और उच्च शिक्षा केवल एक छोटे शहरी वर्ग तक सीमित थी।

फिर भी औपनिवेशिक शिक्षा ने भारत को कई स्थायी विरासतें दीं। अंग्रेजी भाषा ने भारत को वैश्विक स्तर पर जोड़ने का अवसर दिया। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी ज्ञान का प्रवेश हुआ। सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय आंदोलन की चेतनाका प्रसार हुआ। भारतीय समाज में आलोचनात्मक दृष्टि और आधुनिक विचारों का विकास हुआ। यही शिक्षा आगे चलकर स्वतंत्र भारत के लिए आधार बनी।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक काल में शिक्षा की स्थिति विरोधाभासी थी। एक ओर इसने भारतीय समाज को आधुनिक ज्ञान और चेतना प्रदान की, सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म दिया, वहीं दूसरी ओर इसने शिक्षा को सीमित वर्ग तक ही पहुँचाया और व्यापक जनता को अशिक्षा में छोड़ दिया। इसने भारतीयों को उनकी जड़ों से काटा, परंतु यही शिक्षा आगे चलकर स्वतंत्रता की राह का सबसे बड़ा साधन बनी। औपनिवेशिक शिक्षा ने भारत को नई चुनौतियाँ भी दीं और नए अवसर भी। यही कारण है कि आज भी भारत की शिक्षा व्यवस्था का मूल्यांकन करते समय औपनिवेशिक काल की शिक्षा नीति को समझना अनिवार्य है।

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा का विकास

भारत ने 15 अगस्त 1947 को जब स्वतंत्रता प्राप्त की, तब शिक्षा की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। देश की विशाल जनसंख्या में साक्षरता दर केवल 12 प्रतिशत थी, महिलाओं में यह दर 8 प्रतिशत से भी कम थी, और अधिकांश ग्रामीण इलाकों में शिक्षा का नाम तक नहीं था। औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था ने भारत में एक छोटा-सा अंग्रेजी पढ़ा-लिखा वर्ग तो तैयार कर दिया था, परंतु प्राथमिक शिक्षा और व्यावहारिक कौशल पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। ऐसे में स्वतंत्र भारत की सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि शिक्षा को विकास का आधार बनाया जाए और इसे लोकतांत्रिक समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाए। स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधार, नीतियाँ और योजनाएँ लागू की गईं, जिन्होंने शिक्षा की दिशा और दशा को बदलने का प्रयास किया।

स्वतंत्रता के तुरंत बाद 1948 में राधाकृष्णन आयोग गठित किया गया, जिसका उद्देश्य उच्च शिक्षा की समीक्षा करना था। इस आयोग ने यह सिफारिश की कि विश्वविद्यालय केवल डिग्री बाँटने वाले संस्थान न बनें, बल्कि अनुसंधान, नैतिक मूल्यों और राष्ट्रीय एकता को भी बढ़ावा दें। आयोग ने शिक्षा में स्वतंत्र चिंतन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैश्विक चेतना के विकास पर बल दिया। 1952 में मुदालियर आयोग ने माध्यमिक शिक्षा पर ध्यान केंद्रित किया और यह सिफारिश की कि शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना न होकर चरित्र निर्माण और नागरिकता के मूल्यों की स्थापना भी होना चाहिए।

1964-66 के बीच गठित कोठारी आयोग ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था की व्यापक समीक्षा की और यह प्रतिपादित किया कि "शिक्षा आर्थिक और सामाजिक विकास का सबसे शक्तिशाली साधन है।" इस आयोग ने सर्व शिक्षा का लक्ष्य प्रस्तुत किया, व्यावसायिक और

© 2024 कविता कुमारी, डॉ. रेणु गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

तकनीकी शिक्षा को प्रोत्साहन देने की बात कही और शिक्षा में समान अवसर पर बल दिया। इसकी सिफारिशों के आधार पर 1968 में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की गई। इसमें मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा, विज्ञान और तकनीक पर बल, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण और मूल्य शिक्षा जैसे प्रावधान शामिल थे।
1976 में शिक्षा को संविधान की समवर्ती सूची में शामिल किया गया, जिससे केंद्र और राज्य दोनों इस क्षेत्र में नीतियाँ बना सके। 1986 में दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित की गई, जिसमें विशेष रूप से महिला शिक्षा, अनुसूचित जाति-जनजाति और पिछड़े वर्गों की शिक्षा पर ध्यान दिया गया। इस नीति ने समानता और गुणवत्ता पर जोर दिया और कहा कि शिक्षा समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचे। 1992 में इस नीति का संशोधन किया गया, जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी, मूल्य शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया गया।
स्वतंत्रता के बाद शिक्षा में सबसे बड़ी उपलब्धि थी— साक्षरता दर का निरंतर बढ़ना। 1951 में जहाँ साक्षरता 18.3 प्रतिशत थी, वहीं 2011 की जनगणना में यह बढ़कर 74 प्रतिशत हो गई। महिला साक्षरता में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों की संख्या कई गुना बढ़ी। उच्च शिक्षा संस्थानों में भी वृद्धि हुई। आज भारत में विश्व की सबसे बड़ी उच्च शिक्षा प्रणाली में से एक है।
प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अनेक योजनाएँ चलाई गईं। 1986 में ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड शुरू किया गया, जिसके अंतर्गत विद्यालयों में न्यूनतम सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया। 1994 में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (DPEP*)* लागू हुआ, जिसका उद्देश्य था— प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण। इसके बाद 2001 में सर्व शिक्षा अभियान **(**SSA) प्रारंभ किया गया, जिसने शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 2009 में पारित शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE Act, 2009) ने 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया। यह अधिनियम भारतीय शिक्षा इतिहास में मील का पत्थर सिद्ध हुआ।
उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र भारत ने बड़ी प्रगति की। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IITs), भारतीय प्रबंधन संस्थान (IIMs), अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS) और अनेक केंद्रीय विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। इन संस्थानों ने भारत को विश्व स्तर पर वैज्ञानिक, तकनीकी और प्रबंधन क्षेत्र में पहचान दिलाई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC), अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) और राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (NAAC*)* जैसी संस्थाएँ गुणवत्ता सुधार और मानकीकरण के लिए स्थापित की गईं।

शिक्षा पर बनी प्रमुख समितियाँ और आयोग (राधाकृष्णन आयोग, कोठारी आयोग आदि)

भारत में शिक्षा का इतिहास जितना पुराना है, उतना ही व्यापक और विविधतापूर्ण भी है। प्राचीन काल से ही शिक्षा को समाज और संस्कृति की आत्मा माना गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब भारत ने एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में अपना मार्ग तय किया तो शिक्षा को विकास की धुरी के रूप में स्वीकार किया गया। किंतु इतनी विशाल और विविध जनसंख्या वाले देश में शिक्षा को सबके लिए समान अवसर के साथ उपलब्ध कराना आसान कार्य नहीं था। यही कारण है कि समय-समय पर विभिन्न समितियाँ और आयोग गठित किए गए, जिन्होंने शिक्षा की चुनौतियों और आवश्यकताओं का अध्ययन किया और उसके अनुरूप सुझाव दिए। इन आयोगों और समितियों ने न केवल भारतीय शिक्षा व्यवस्था की संरचना को प्रभावित किया, बल्कि राष्ट्रीय नीतियों और योजनाओं के निर्माण की नींव भी रखी।

स्वतंत्रता से पूर्व की शैक्षिक समितियाँ और आयोग

भारत में शिक्षा पर आयोगों और समितियों की परंपरा ब्रिटिश शासनकाल से प्रारंभ होती है। अंग्रेजों का उद्देश्य भले ही अपने प्रशासन और व्यापार के लिए सहयोगी तैयार करना था, लेकिन उन्होंने शिक्षा के ढाँचे को नया रूप दिया।
वुड्स डिस्पैच (1854) को भारत की "शिक्षा का मैग्ना कार्टा" कहा जाता है। इसमें यह स्वीकार किया गया कि शिक्षा का प्रसार सरकार की जिम्मेदारी है। प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए संस्थानों की स्थापना, महिला शिक्षा को प्रोत्साहन और विश्वविद्यालयों की स्थापना का सुझाव इसी में दिया गया। 1857 में कलकत्ता, बंबई और मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना इसी नीति के परिणामस्वरूप हुई।
हंटर आयोग (1882-83) ने प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान केंद्रित किया। इसने सुझाव दिया कि प्राथमिक शिक्षा को जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाए और स्थानीय निकायों को इसकी जिम्मेदारी दी जाए।
सैडलर आयोग (1917-19) ने विश्वविद्यालय शिक्षा पर विशेष बल दिया। इसने विश्वविद्यालयों को केवल परीक्षा केंद्र बनाने की प्रवृत्ति की आलोचना की और अनुसंधान, पाठ्यक्रम और अध्यापन सुधारों पर बल दिया।
सर्गेंट योजना (1944) ब्रिटिश शासन का अंतिम बड़ा प्रयास था। इसमें शिक्षा को व्यापक और सार्वभौमिक बनाने की योजना प्रस्तुत की गई। इसमें 40 वर्षों के भीतर निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद यह योजना लागू नहीं हो सकी, परंतु इसने भारतीय शिक्षा की दिशा तय की।

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा पर बनी समितियाँ और आयोग

स्वतंत्र भारत के लिए शिक्षा केवल व्यक्तिगत विकास का साधन नहीं बल्कि राष्ट्रीय निर्माण की नींव थी। इसलिए स्वतंत्रता के बाद से अनेक आयोग गठित किए गए, जिनकी विस्तृत चर्चा इस प्रकार है।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) राधाकृष्णन आयोग

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद उच्च शिक्षा की समीक्षा के लिए डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में आयोग गठित किया गया। आयोग का उद्देश्य था— विश्वविद्यालयों को स्वतंत्र भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना।इस आयोग ने सुझाव दिया कि विश्वविद्यालय केवल डिग्री बाँटने वाले संस्थान न बनें, बल्कि चरित्र निर्माण, अनुसंधान और राष्ट्रीय एकता के केंद्र बनें। इसमें अध्यापन और अनुसंधान की गुणवत्ता पर बल दिया गया। आयोग ने कहा कि

© 2024 कविता कुमारी, डॉ. रेणु गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

विश्वविद्यालयों को राजनीति से दूर रखा जाए और उनमें स्वतंत्रता, सृजनात्मकता और नैतिक मूल्यों का विकास हो।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) मुदालियर आयोग

1952 में माध्यमिक शिक्षा की समीक्षा के लिए डॉ. ए. लक्ष्मण मुदालियर की अध्यक्षता में आयोग गठित हुआ। इस आयोग ने शिक्षा को जीवनोपयोगी और समाजोपयोगी बनाने पर बल दिया।आयोग ने सुझाव दिया कि माध्यमिक शिक्षा केवल उच्च शिक्षा की तैयारी न होकर जीवन की समस्याओं को हल करने में सहायक होनी चाहिए। इसने व्यावसायिक और तकनीकी विषयों को शामिल करने, पाठ्यक्रम को विविध और उपयोगी बनाने, खेलकूद और सहशैक्षिक गतिविधियों को बढ़ावा देने पर जोर दिया।

शिक्षा आयोग (1964-66) — कोठारी आयोग

भारतीय शिक्षा इतिहास में कोठारी आयोग का विशेष स्थान है। डॉ. डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में गठित इस आयोग ने पहली बार शिक्षा को राष्ट्रीय विकास से जोड़ा। आयोग ने कहा— "शिक्षा राष्ट्र की सबसे बड़ी शक्ति है, यह सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास का साधन है।"

आयोग ने सर्व शिक्षा का लक्ष्य प्रस्तुत किया। इसमें कहा गया कि प्राथमिक शिक्षा सार्वभौमिक और निःशुल्क होनी चाहिए। माध्यमिक शिक्षा में व्यावसायिक विषयों को शामिल किया जाए और उच्च शिक्षा में अनुसंधान और विज्ञान-तकनीक को प्रोत्साहित किया जाए। आयोग ने शिक्षा के लोकतंत्रीकरण, समान अवसर, मूल्य शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण और संसाधनों के विकास पर भी बल दिया। इसकी सिफारिशों के आधार पर 1968 में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968)

यह नीति कोठारी आयोग की सिफारिशों पर आधारित थी। इसमें कहा गया कि शिक्षा को राष्ट्रीय एकता और सामाजिक न्याय का साधन बनाया जाए। मातृभाषा में शिक्षा, विज्ञान और तकनीक पर बल, शिक्षा के अवसरों में समानता और प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण जैसे प्रावधान इसमें शामिल थे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और उसका संशोधन (1992)

1986 में घोषित दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा में समानता और गुणवत्ता पर बल दिया। इसमें महिला शिक्षा, अनुसूचित जाति-जनजाति और पिछड़े वर्गों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया।इस नीति में "समानता और उत्कृष्टता" का नारा दिया गया। इसमें ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड, नवोदय विद्यालय, बालिका शिक्षा और वयस्क शिक्षा पर बल दिया गया। 1992 में इस नीति का संशोधन किया गया, जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी, मूल्य शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा को प्राथमिकता दी गई।

निष्कर्ष

डॉ. सैम पित्रोदा की अध्यक्षता में गठित इस आयोग ने उच्च शिक्षा और शोध को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने का सुझाव दिया। इसमें विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता, अनुसंधान में निवेश, सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग और व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देने की बात कही गई।

यद्यपि यह कोई आयोग नहीं था, किंतु संसद द्वारा पारित यह अधिनियम शिक्षा सुधार की दिशा में ऐतिहासिक कदम था। इसने 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया।

यह स्वतंत्र भारत की तीसरी और सबसे व्यापक शिक्षा नीति है। इसमें 5+3+3+4 की नई संरचना, बहुविषयक उच्च शिक्षा, मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, कौशल विकास और अनुसंधान पर विशेष बल दिया गया। इस नीति का उद्देश्य है— भारत को 21वीं सदी में "ज्ञान महाशक्ति" बनाना।

तभी सफल होंगे जब उनके पास रोजगार पाने या स्वयं रोजगार देने की क्षमता होगी। इसके लिए शिक्षा को उद्योग और बाज़ार की आवश्यकताओं से जोड़ना आवश्यक है।इसी उद्देश्य से "इंटर्नशिप", "एप्रेंटिसशिप" और "इंडस्ट्री-इंस्टीट्यूट पार्टनरशिप" को बढ़ावा दिया जा रहा है। इससे विद्यार्थी केवल सैद्धांतिक ज्ञान ही नहीं बल्कि व्यावहारिक अनुभव भी प्राप्त कर सकें।वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौती है— पर्यावरण संकट और जलवायु परिवर्तन। इसलिए शिक्षा में पर्यावरण शिक्षा और सतत विकास को शामिल किया गया है। विद्यालय स्तर से ही बच्चों को प्रकृति संरक्षण, नवीकरणीय ऊर्जा, पुनर्चक्रण और हरित प्रौद्योगिकी की जानकारी दी जा रही है।संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य (SDGs) ने भी शिक्षा को सतत विकास का आधार माना है। भारत में भी "पर्यावरण अध्ययन" और "सतत विकास" अब शिक्षा के पाठ्यक्रम का हिस्सा हैं।आज की दुनिया एक वैश्विक गाँव बन चुकी है। शिक्षा भी अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आपस में जुड़ गई है। विदेशी विश्वविद्यालय भारत में अपने केंद्र खोल रहे हैं और भारतीय विद्यार्थी विदेशों में जाकर अध्ययन कर रहे हैं। ऑनलाइन कोर्स और डिग्री ने वैश्विक शिक्षा को और अधिक सुलभ बना दिया है।यह वैश्वीकरण शिक्षा को प्रतिस्पर्धी और गुणवत्ता-उन्मुख बना रहा है। विद्यार्थियों को अब केवल राष्ट्रीय नहीं बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी प्रतिस्पर्धा करनी होती है।वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप पहले की तुलना में पूरी तरह बदल चुका है। यह परिवर्तन डिजिटल शिक्षा, कौशल विकास, जीवन कौशल, अनुसंधान, बहुविषयक दृष्टिकोण, पर्यावरणीय चेतना और वैश्वीकरण जैसे अनेक आयामों से जुड़ा है। शिक्षा अब केवल पुस्तक या डिग्री तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह जीवन का समग्र निर्माण और राष्ट्र की प्रगति का साधन बन गई है।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय; 2020.
2. भारत सरकार. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (संशोधन 1992 सहित). नई दिल्ली: मानव संसाधन विकास मंत्रालय; 1986.
3. भारत सरकार. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968. नई दिल्ली; 1968.
4. कोठारी डीएस. शिक्षा आयोग रिपोर्ट. नई दिल्ली: भारत सरकार; 1966.
5. राधाकृष्णन सर्वपल्ली. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग रिपोर्ट (1948–49). नई दिल्ली; 1949.
6. मुदालियर एएल. माध्यमिक शिक्षा आयोग रिपोर्ट. नई दिल्ली; 1953.

© 2024 कविता कुमारी, डॉ. रेणु गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

7. भारत सरकार. शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009. नई दिल्ली; 2009.
8. भारत सरकार. भारत में शिक्षा: एनएसएस 71वां राउंड. नई दिल्ली: सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय; 2014.
9. योजना आयोग. बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017), खंड III: सामाजिक क्षेत्र. नई दिल्ली; 2013.
10. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी). मानव विकास प्रतिवेदन 2020. न्यूयॉर्क; 2020.
11. यूनेस्को. एजुकेशन 2030: इंचियोन घोषणा और कार्य रूपरेखा. पेरिस; 2015.

Creative Commons (CC) License

This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2024 कविता कुमारी, डॉ. रेणु गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/